Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 02, November, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

"कबीर काव्य में सामाजिक न्याय के तत्वों का आलोचनात्मक अध्ययन"

डॉ. आसिफ उमर,
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
E-Mail:- aumar1@jmi.ac.in

सारांश

भारतीय मध्यकालीन संत साहित्य में कबीर एक ऐसी चेतना के रूप में उभरते हैं जिन्होंने न केवल धार्मिक पाखंडों और सामाजिक विषमताओं को चुनौती दी, बल्कि अपने दोहों, साखियों और पदों के माध्यम से सामाजिक न्याय की एक सशक्त आवाज भी प्रस्तुत की। वे न तो केवल भक्ति के संत हैं और न ही मात्र एक सुधारक, बल्कि वे एक सामाजिक क्रांतिकारी थे जिनका लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्यों की प्रतिष्ठा हो।

कबीर का काव्य धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक दृष्टियों से समृद्ध है। इसमें जहां ईश्वर की एकता और आत्मा की शुद्धता की बात होती है, वहीं सामाजिक अन्याय, जातिवाद, धर्मांधता और रूढ़ियों पर तीखा प्रहार भी मिलता है। इस शोध पत्र में कबीर के काव्य में सामाजिक न्याय के तत्वों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाएगा और यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि उनका काव्य आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कितना प्रासंगिक है।

बीज शब्द : सामाजिक न्याय, ब्राह्मणवाद, धर्मांधता, कर्मकांड, धर्माचार, समतामूलक, क्रांति, लोकतांत्रिक।

प्रस्तावना

सामाजिक न्याय का अर्थ : आधुनिक विश्व में सामाजिक न्याय की अवधारणा एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरा है। भारत में 26 जनवरी 1950 को नया संविधान लागू होने के बाद यह सामाजिक न्याय का स्वर स्पष्टता से सुनाई देता है।

Author:- Asif Umar
Email:- aumar1@jmi.ac.in
Received:- 04 October, 2025
Accepted:- 20 November, 2025.
Available online:- 30 November, 2025
Published by JSSCES, Bareilly
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Non Commercial 4.0 International License

सामाजिक न्याय का अर्थ समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, अधिकार और सम्मान प्रदान करना है। इसमें जाति, धर्म, लिंग, वर्ग और अन्य सामाजिक संरचनाओं के आधार पर होने वाले भेदभाव का विरोध शामिल होता है। भारतीय संविधान का प्रस्तावना भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए कृत संकल्प है। भारतीय संविधान का प्रस्तावना कहता है-

" हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 02, November, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्त, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता , प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चत करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 .11 .1949 ई (मिति मार्ग शीष शुक्ल सप्तमी, संवत 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं ।"[1]

इस प्रकार भारत का संविधान भारत के सभी नागरिकों को न्याय , समानता और बंधुत्व का संदेश देता है। यह देश में कानून का शासन और सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करता है । भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की अवधारणा ऐतिहासिक रूप से जातिवाद , धर्मांधता और सामंती मानसिकता के विरुद्ध एक संघर्ष रही है । यद्यपि कबीर के काल में आज के सामाजिक न्याय जैसी कोई अवधारणा नहीं थी लेकिन समाज आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक रूप से काफी पीड़ित था । कबीर इन्हीं सब मुद्दों को तात्कालिक संदर्भ में व्याख्यायित करते हैं जिनमें हम आज के संदर्भ में सामाजिक न्याय के बीज को खोज सकते हैं ।

कबीर का समय (15वीं शताब्दी का मध्य) एक ऐसा युग था जब समाज अनेक धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था । शूद्रों और स्त्रियों को शिक्षा और मंदिर प्रवेश जैसे मूल अधिकारों से वंचित रखा गया था । यद्यपि कबीर मूलतः एक आध्यात्मिक संत थे इसलिए सामाजिक विषमता को दूर करना कबीर का प्रथम लक्ष्य नहीं था लेकिन वे उस सीमा तक इस कार्य में प्रवृत हुए जिस सीमा तक सामाजिक परिस्थितियाँ कबीर की आध्यात्मिक साधना में बाधक बनी । कबीर अपने पूर्ववर्ती सभी संतों और चिंतकों से इस अर्थ में भिन्न थे कि उन्होंने अप्रिय सत्य कहने में कभी हिचक नहीं दिखाई। उन्होंने मानव की समानता के आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए न केवल तत्कालीन मुसलमान शासकों को धर्मांधता के लिए फटकारा बल्कि हिंदुओं को भी ऊँच-नीच, छुआ-छूत और कोरे

कर्मकांड के लिए धिक्कारा । कबीर की यह स्पष्टवादिता ही उन्हें उच्च कोटि के सामाजिक चिंतक के रूप में प्रतिष्ठित करती है । हिंदू हो या मुसलमान , ऊँच हो या नीच , धनी हो या निर्धन ,सभी में एक ही परमात्मा के दर्शन करने वाले कबीर को यह स्वीकार नहीं था कि धर्म ,जाति या संप्रदाय में बंटकर लोग एक दूसरे से घृणा करें। वे घृणा की जगह पर प्रेम और संघर्ष की जगह पर समन्वय के हिमायती थे। इस पृष्ठभूमि में कबीर का काव्य सामाजिक न्याय की अवधारणा को एक नया अर्थ प्रदान करता है।

कबीर का जातिप्रथा के विरुद्ध स्वर :

कबीर ने समाज में फैले जातिप्रथा और वर्ण व्यवस्था पर चोट की । कबीर दास जातिप्रथा में विश्वास नहीं करते थे । वह यह मानने को तैयार नहीं थे कि मनुष्य जन्म से ही छोटा बड़ा होता है, न ही वे

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 02, November, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

इस बात में विश्वास करते थे कि भगवान ने मनुष्य को जन्म से ब्राह्मण और जन्म से शुद्ध बनाया है। जातिप्रथा के खिलाफ उनके स्वर बहुत ही सीधे-साधे थे। वे ब्राह्मण से पूछते हैं कि अगर तू जन्म से श्रेष्ठ है तो फिर तेरा जन्म भी उस जगह से क्यों हुआ जिस जगह से एक शूद्र का जन्म होता है। इस प्रकार वे मुसलमानों से पूछते हैं कि अगर तू जन्म से मुसलमान है तो तूने सुन्नत मां के पेट में क्यों नहीं करा ली। वे कहते हैं कि काली गाय और सफेद गाय के दूध को आपस में मिला दिया जाए तो उसे अलग-अलग नहीं किया जा सकता है फिर मनुष्य- मनुष्य के बीच भेद कैसे । उनका विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य एक ईश्वर की संतान है इसलिए किसी को ब्राह्मण और किसी को शूद्र मानने का कोई अर्थ नहीं है । छुआछूत का खंडन करते हुए वे कहते हैं कि छूत से ही संसार का जन्म हुआ है । इसलिए शूद्र को अछूत और ब्राह्मण को पवित्र कैसे कहा जा सकता है?

कबीर ने जातिवाद, ब्राह्मणवाद, ऊँच- नीच की भावना और कर्मकांडों पर तीखा प्रहार किया । उनके अनुसार मनुष्य की श्रेष्ठता उसके कर्म से होती है जन्म से नहीं । वे कहते हैं,

एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा ।

एक जोति से सब उत्पन्ना, कौन बामन कौन सूदा।। [2]

कबीर की दृष्टि में ऊंचे कुल में जन्म लेना ही महत्व नहीं रखता बल्कि करनी ऊंची होनी चाहिए ।

ऊंचे कुल क्या जनमिया, जे करनी ऊंच न होइ।

सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निंद्रा सोई।।[3]

कबीर स्पष्ट करते हैं कि साधु यानी सच्चे इंसान की पहचान उसके ज्ञान और कर्म से होनी चाहिए ना कि उनकी जाति से । कबीर ब्राह्मणत्व को आत्मज्ञान से जोड़ते हैं न कि जन्म से । यह जाति विरोध कबीर के सामाजिक न्याय के आदर्श का केंद्र बिंदु है ।उनके लिए जातिप्रथा सामाजिक असमानता का सबसे बड़ा कारण थी।

इस प्रकार कबीर ने तत्कालीन धर्म, संप्रदायों के अंतर्विरोधों और हिंदू वर्ण-व्यवस्था और मत-मतांतरों की विकृति को उजागर कर समाज के सामने एक नवीन व्यवस्था की वकालत की।

धर्म के नाम पर भेदभाव और पाखंड का विरोध :

कबीर ने हिंदू-मुस्लिम दोनों धार्मिक समुदायों की रूढ़ियों, कर्मकांडों और बाह्याचारों की आलोचना की । उन्होंने धर्म को मानवता की सेवा का माध्यम माना, न कि भाजन और शोषण का औजार। सम्पूर्ण जगत में एक ही परमात्मा के दर्शन करना कबीर चिंतन का मूल तत्व है । उन्होंने अपने अनुभूत सत्य की प्रतिष्ठा के लिए धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास और संकीर्णताओं पर चोट की। उनका मानना था कि धर्म के सच्चे रहस्य को भूलकर कृत्रिम विभेदों द्वारा उत्तेजित होकर हिंदू और मुसलमान दोनों धर्म के नाम पर अधर्म कर रही है । ऐसी स्थिति में सच्चे मार्ग के प्रदर्शन का श्रेय कबीर को जाता है। इस्लाम के बाह्याचारों पर आक्षेप करते हुए कबीर कहते हैं ,

" ना जानै साहब कैसा है।

मुल्ला होकर बांग जो दैवे ,

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 02, November, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

क्या तेरा साहब बहरा है ।

कीड़ी के पग नेवर बाजे

सो भी साहब सुनता है ।

माला फेरी तिलक लगाया,

लंबी जटा बढ़ाता है ।

अंतर तेरे कुफर कटारी ,

यों नहिं साहब मिलता है। " [4]

इसी प्रकार कबीर हिंदू धर्म में फैले बाह्याचार पर आक्रमण करते हैं और कहते हैं , "

मन ना रंगाए रंगाए जोगी कपड़ा ।

आसन मारि मंदिर में बैठे

ब्रह्म छांड़ि पूजन लागे पथरा ।

कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले

दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा ।

जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले

काम जराय जोगी होय गैले हिजरा ।

मथवा मुंड़ाय जोगी कपड़ा रंगौले,

गीता बांच के होय गैले लबरा ।

कहहिं कबीर सुनो भाई साधो,

जम दरवजवा बांधव जैबै पकड़ा।। [5]

यहां कबीर मुल्ला और पंडित दोनों की निंदा करते हैं जो केवल बाहरी धर्माचारों में लगे रहते हैं । लेकिन उनके भीतर सत्य , करुणा और ज्ञान का अभाव है। कबीर की दृष्टि में धर्म वही है जो मनुष्यता को बढ़ावा दे। कबीर के मानवीय सोच पर टिप्पणी करते हुए शिवकुमार मिश्र कहते हैं, " जिस समय सारा समाज सुख की नींद सो रहा था , मनुष्यता की उज्ज्वल भविष्य का यह द्रष्टा जाग रहा था । सारा समाज सुख सुविधाओं को भोग रहा था किंतु कबीर दुखों की भट्टी में सुलग रहे थे, युग की पीड़ा का साक्षात्कार करते हुए आंसू बहा रहे थे। वे ऊपर से अक्खड़ तथा फक्कड़ थे किंतु भीतर से नितांत दुखी तथा संतप्त, अपने लिए नहीं , कोटि-कोटि साधारण जनों की पीड़ा तथा व्यथा से मुक्ति के लिए ।" [6]

इस प्रकार कबीर ने मानव को मानव से मिलाने के लिए जीवन भर अथक प्रयास किया। वास्तव में कबीर सभी जातियों, धर्म और संप्रदायों के सामान्य जन से एकात्म भाव का अनुभव करते थे।

स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण और लैंगिक न्याय :

कबीर की वाणी में स्त्रियों के प्रति भी सम्मानपूर्ण और समतामूलक दृष्टिकोण दिखाई देता है । वह उन पुरुषवादी मूल्यों का विरोध करते हैं जो स्त्रियों को केवल भोग्या या पाप की जड़ मानते हैं । नारी के मातृत्व रूप का वर्णन कबीर ने भी किया है। उन्होंने खुद को एक बालक के रूप में और नारी को माता के रूप में माना है । वह कहते हैं ,

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 02, November, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

हरि जननी मैं बालक तेरा ।

काहे ना अबगुन बकसहु मेरा।। [7]

इस पद में मां और पुत्र के संबंध की जो अभिव्यक्ति कबीर ने की है उसमें एक माता के स्नेहिल हृदय की झांकी देखने को मिलती है । नारी के प्रति कबीर वहीं निष्ठुर हैं जहां वह ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधक बनती है। इसके अतिरिक्त कबीर ने सती और सदाचारिणी स्त्री की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने भक्त और पतिव्रता को एक समान मानते हुए सती और शूर को साधना का आदर्श माना। सती और पतिव्रता स्त्रियों की

जितनी प्रशंसा कबीर ने की मध्यकालीन संतों में और किसी ने नहीं किया । कबीर में एक तरह से स्त्री-पुरुष दोनों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समान मानने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। वह स्त्रियों को भी भक्ति और ज्ञान के पथ पर चलने का समान अधिकार देते हैं।

कबीर की भक्ति और सामाजिक क्रान्ति :

कबीर भक्ति को केवल ईश्वर की उपासना नहीं मानते थे बल्कि यह एक सामाजिक क्रान्ति का माध्यम था। उनके लिए भक्ति का उद्देश्य आत्मा की मुक्ति के साथ-साथ समाज में अन्याय और शोषण से मुक्ति पाना भी था, इसलिए कबीर की भक्ति सामाजिक परिवर्तन से जुड़ी हुई है। उन्होंने समस्त व्रत , उपवास और तीर्थ को एक साथ अस्वीकार कर दिया । उन्होंने एक अल्लाह निरंजन के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया । इस लगन या प्रेम का साधन यह प्रेम ही है और कोई भी मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया । इस प्रकार उन्होंने ईश्वर प्राप्ति का एक आसान और सर्वसुलभ मार्ग अपनाया जो सबके लिए एक समान था।

एक निरंजन अल्लाह मेरा, हिंदू तुरक दहूं नहिं मेरा।[8]

कबीर एक ईश्वर में विश्वास करते हैं, जिसे कोई भी प्रेम के बल पर प्राप्त कर सकता है।

कबीरा खड़ा बाजार में ,मांगे सबकी खैर ।

ना काहू से दोस्ती , ना काहू से बैर।[8]

यहां कबीर उस निष्पक्ष दृष्टिकोण की बात करते हैं जहां भेदभाव, पक्षपात और द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं है । यह विचार सामाजिक न्याय की गहराई से जुड़ा हुआ है।

कबीर की भाषा और सामाजिक न्याय :

कबीर ने अपनी कविता के लिए संस्कृत या फारसी जैसी प्रतिष्ठित भाषाओं के बजाय सधुक्कड़ी(हिंदी की बोलचाल की भाषा) को चुना । यह भाषा- संवेदन कबीर के लोकतांत्रिक और जनवादी दृष्टिकोण का परिचायक है । उनकी भाषा आम जनमानस से जुड़ी थी और यही उन्हें समाज के हर वर्ग तक पहुंचने में सफल बनाती है ।

उनकी भाषा में लोकोक्तियाँ, प्रतीक, उपमा और व्यंग्य के माध्यम से गहरी सामाजिक संदेश समाहित होते हैं।

मैं तो तुम्हारी दासी हो सजना तुम हमरे भरतार ।

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 02, November, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

दीनदयाल दया कर आवौ समरथ सिरजनहार।।[9]

आज हिंदी पट्टी में कबीर और तुलसी सिर्फ और सिर्फ अपनी भाषा के कारण ही आम जनों के दिल पर राज करते हैं। उनकी आम भाषा लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करती है और यह भाषा उनकी अपनी लगती है ।

बिरहा कहै कबीर सों ,तू जनि छांड़ै मोहिं ।

पारब्रह्म के तेज में, तहां ले राखौ तोहीं ।।[10]

अगर संक्षेप में यह कहें कि कबीर की भाषा उनकी लोकप्रियता को एक प्रमुख आधार प्रदान करती है तो अनुचित नहीं होगा।

आज के समय में जब जातिवाद, धार्मिक कट्टरता, वर्ग-संघर्ष और लैंगिक असमानता जैसी समस्याएं समाज में व्याप्त हैं, कबीर की कविता हमें सामाजिक न्याय के मूल्यों की याद दिलाती है। उनकी वाणी सामाजिक सुधारकों , शिक्षकों, आंदोलनकारियों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकती है । कबीर के दोहे आज भी जन आंदोलन , दलित चेतना और स्त्री विमर्श में उद्धृत होते हैं । कबीर के बाद सहजोबाई , दयाबाई, मीरा आदि स्त्री संतों की प्रतिष्ठा का श्रेय कबीर की उस चिंतन को जाता है जो उनकी रचनाओं में मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर केवल एक संत नहीं थे, वह एक सामाजिक क्रांतिकारी थे । उनके काव्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा केवल विचार या दर्शन नहीं बल्कि एक क्रियात्मक स्वरूप में प्रकट होती है । वह जाति, धर्म , लिंग, वर्ग और भाषा की हर प्रकार के भेदभाव का विरोध करते हैं और समता, करुणा और आत्मज्ञान पर

आधारित समाज की कल्पना करते हैं। उनका काव्य आज भी न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक है। कबीर की वाणी हमें सिखाती है कि सच्चा धर्म वही है जो न्याय की स्थापना करें और हर मानव को उनकी गरिमा प्रदान करें। हिंदी साहित्य में जब कभी भी सामाजिक न्याय पर आधारित काव्य की बात आती है तो सबसे पहले कबीर का ही नाम मन-मस्तिष्क में कौंधता है। यही कबीर काव्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है।

संदर्भ-

1. डॉ दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान, पृष्ठ 21 , प्रकाशक वाधवा ऐंड कंपनी, दिल्ली , 8वां संस्करण 2002.
2. प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कबीर, पृष्ठ 111 ,प्रकाशन विभाग, दिल्ली, षष्ठम संस्करण 2000.
3. प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कबीर, पृष्ठ 111 , प्रकाशन विभाग, दिल्ली, षष्ठम संस्करण 2000.
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ 209, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018.
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ 209, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 20186. शिव कुमार मिश्र, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, पृष्ठ 81, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2010.

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 02, November, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

6. शिव कुमार मिश्र, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, पृष्ठ 81, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2010
7. अनिल राय, स्त्री के हक में कबीर, पृष्ठ 102, हंस प्रकाशन, दिल्ली, 2020
8. विजयेंद्र स्नातक, कबीर, पृष्ठ 126, राधा कृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, 1990
9. डा जयदेव सिंह, डॉ वासुदेव सिंह, कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ 65, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000
10. डॉ जयदेव सिंह, डॉ वासुदेव सिंह, कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ 65 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000.